नारायण चंद्र राणा पुणे स्थित 'अंतर–विश्वविद्यालय केंद्र : खगोल–विज्ञान और खगोल–भौतिकी' में अध्यापन का कार्य करते थे। सन् 1977 से वे मुंबई स्थित टाटा मौलिक अनुसंधान संस्थान (टी.आई. एफ.आर.) में सैद्धांतिक खगोल–भौतिकी दल के सदस्य भी थे। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि ली थी। मुंबई विश्वविद्यालय से उन्हें सन् 1983 में पीएच. डी. की उपाधि मिली। उनके शोध का क्षेत्र ब्रह्मांड में सूक्ष्म–तरंग पृष्ठभूमिक विकिरण का स्रोत, 'बिग बैंग' में हल्के तत्वों का स्रोत, आकाशगंगा में भारी तत्वों का स्रोत एवं उनका वितरण, पृथ्वी की घूर्णन गति, स्थितीय खगोल–विज्ञान और खगोल–विज्ञान का इतिहास रहा है। उन्हें सन् 1983 में भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान एकाडेमी का युवा वैज्ञानिक पुरस्कार मिला। उसी साल टी.आई.एफ.आर. के भौतिकी स्कूल से उन्हें सर्वोत्तम शोध–प्रबंध का सम्मान भी मिला। भौतिकी के अध्यापन के साथ–साथ वे खगोल–विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में भी सक्रिय रूप से लगे रहे। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में विज्ञान पर उनके 100 से अधिक लेख छप चुके हैं। उन्होंने एक पुस्तक का सहलेखन भी किया है।

ग्रहण
मिथक और यथार्थ

ग्रहण
मिथक और यथार्थ

लेखक

नारायण चंद्र राणा

अनुवादक

सुनील कुमार सिंह



विज्ञान प्रसार

प्रकाशक

विज्ञान प्रसार

सी-24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया,
नई दिल्ली - 110 016
फोन : 6866675, 6965980, 6864157
फैक्स : 11-6965986
इंटरनेट : http://www.vigyanprasar.com

ग्रहण : मिथक और यथार्थ

(Hindi Version of Myths & Legends Related to Eclipses)

लेखक : नारायण चंद्र राणा

संपादन : नरेन्द्र सहगल
सुबोध महंती

चित्र : नारायण चंद्र राणा

मूल अंग्रेजी संस्करण : 1995
प्रथम हिंदी संस्करण : 1999
ISBN. 81-7480-055-7

शब्द-संसाधन एवं पृष्ठयोजना : कु. मंदाकिनी मुले

मुद्रक : न्यूटैक फोटोलिथोग्राफर्स दिल्ली-110095

विषय–सूची

दो शब्द

अक्तूबर 1995 के पूर्ण सूर्यग्रहण पर विज्ञान प्रसार ने जितनी सामग्री प्रकाशित की है, यह पुस्तिका उनमें से एक है। इस सूर्यग्रहण को भारत के कई भागों में देखा गया था। इस पुस्तिका में प्रोफेसर राणा ने विभिन्न संस्कृतियों और धार्मिक परंपराओं में ग्रहणों से जुड़े अंधविश्वास, मिथक और यथार्थ को समेटने का प्रयास किया है। उन्होंने इनसे संबंधित 'तर्कों' को भी ढूढने की कोशिश की है। उन्होंने यह भी बताया है कि कब और किन परिस्थितियों में इनका जन्म हुआ। लेकिन इन सबका मकसद अंधविश्वासों को उचित ठहराना कतई नहीं है। निश्चय ही लेखक की ऐसी कोई मंशा नहीं है।

ग्रहण उन प्राकृतिक घटनाओं में से हैं जिन्हें सबसे पहले समझा गया और अंधविश्वास की परिधि से बाहर निकालकर विज्ञान के परिक्षेत्र में लाया गया। फिर भी यह आश्चर्यजनक है कि ग्रहणों से जुड़े कुछ अंधविश्वास आज भी मौजूद हैं। जिन लोगों ने ग्रहण को ठीक से देखा है, उनमें निश्चय ही ग्रहण के प्रति भय या बेचैनी अब कम हो गई होगी। ग्रहण संबंधी मिथकों और अंधविश्वासों पर उनकी 'विश्वसनीयता' भी कम हुई होगी, भले ही यह पूरी तरह खत्म न हुई हो। ये लोग अपने निकटवर्तियों को भयमुक्त करने में काफी मदद कर सकते हैं।

यदि हम प्रचलित मिथकों और अंधविश्वासों को भलीभांति समझ लें, तो उन्हें दूर करने के उपाय भी ढूंढ सकते हैं। इसके लिए हमें ऐसी रणनीति बनानी होगी जो प्रचलित परंपराओं का सामना कर सके। हमें आशा है कि

यह पुस्तिका इस प्रयास में सार्थक भूमिका निभाएगी। हमारा ऐसा कोई दावा नहीं है कि यह पुस्तिका अपने आप में पूर्ण और व्यापक है। इसके भावी संस्करण के लिए हम सुझावों का स्वागत करते हैं।

नई दिल्ली

नरेन्द्र सहगल

निदेशक, विज्ञान प्रसार

प्राक्कथन

मानव इतिहास में शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा होगा जो ग्रहणों से अपरिचित हो। इन्होंने कभी न कभी सबका ध्यान अवश्य आकर्षित किया है। इस पुस्तिका में विभिन्न संस्कृतियों व धार्मिक परंपराओं में प्रचलित अंधविश्वासों को प्रस्तुत किया गया है। ग्रहणों से जुड़ी कथाएं कालांतर से चली आ रही हैं। इनके बारे में अब तक जिन वैज्ञानिक तथ्यों का पता चला है, उनके आलोक में हमने विभिन्न समुदायों में प्रचलित मान्यताओं का आधार ढूंढने का प्रयास किया है।

औद्योगिक क्रांति के बाद समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। लेखक का मानना है कि राष्ट्रीय विज्ञान व प्रौद्योगिकी संचार परिषद इस दिशा में उल्लेखनीय भूमिका निभा रही है। लेखक के अनुसार जब तक नई और पुरानी पीढ़ी के लोगों को ग्रहण से जुड़ी मान्यताओं से अवगत नहीं कराया जाएगा, तब तक इन अंधविश्वासों को दूर नहीं किया जा सकता। पीढ़ी–दर–पीढ़ी जारी रहने से इन अंधविश्वासों की जड़ें काफी गहरी चली गई हैं। इन अंधविश्वासों को संस्थागत दर्जा हासिल हो गया है। आशा है कि इसके खिलाफ लड़ाई में यह पुस्तिका परिषद की काफी मदद करेगी।

लेखक डा. वी. बी. कांबले और डा. नरेन्द्र सहगल का आभारी है, जिन्होंने इस पुस्तिका को लिखने के लिए प्रेरित किया। इसे लिखने में 'अंतर–विश्वविद्यालय केंद्र : खगोल–विज्ञान और खगोल–भौतिकी' से भी लेखक को काफी मदद मिली। लेखक श्री अजित घोडके, श्री ज्ञानेश्वर

कुल, श्री सुमीत गावंडे, सुश्री हर्षदा देशपांडे, सुश्री अपर्णा अथानी, श्री दिनेश आपटे और सुश्री मृदुला चंदोला के प्रति भी आभार व्यक्त करता है, जिन्होंने पुस्तिका के लिए तथ्य जुटाने, जरूरत पड़ने पर उनका अंग्रेजी अनुवाद करने और चित्रांकन में मदद की। लेखक सुश्री नीति आनंद का भी आभारी है, जिन्होंने पांडुलिपि को कई बार पढ़ा और भाषा की दृष्टि से उसका संपादन किया, ताकि वह आम पाठकों के लायक बन सके।

नारायण चंद्र राणा

भूमिका

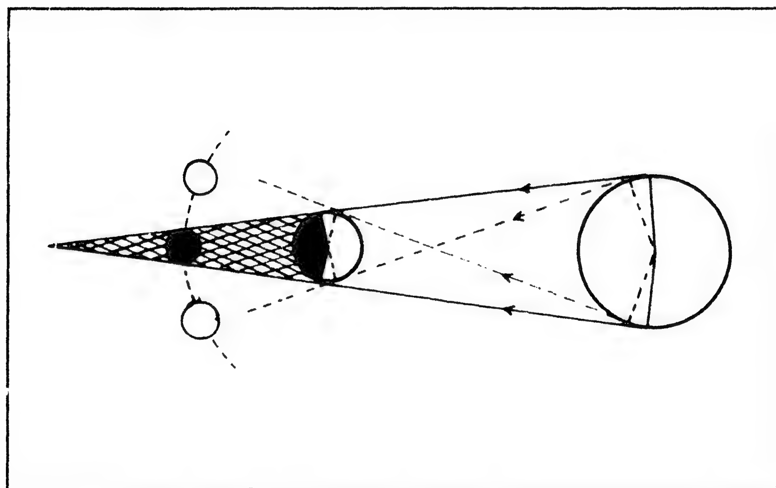
ग्रहण, खासकर पूर्ण सूर्यग्रहण, उन चंद खगोलीय घटनाओं में से हैं जो मानव तो क्या, पेड़–पौधों और जानवरों से भी छिपे नहीं रह सकते। यह संभव है कि आंशिक सूर्यग्रहण का किसी को पता न चले, लेकिन चंद्रग्रहण के साथ ऐसा नहीं हो सकता। ग्रहण की अवधि अधिक नहीं होती। ये बिना किसी चेतावनी के अचानक घटित होते हैं और फिर गायब हो जाते हैं। ग्रहण के कारण सूर्य और चंद्रमा की नियमित खगोलीय गतियों में जो व्यवधान उत्पन्न होता है, उससे लोगों में भय का वातावरण बनता है। मान्यता थी कि सूर्य देवता और चंद्र देवता कुछ समय के लिए आकाश के किन्हीं दानवों के शिकंजे में आ जाते हैं। बाढ़, सूखा या भूकंप को दानव–प्रभावित घटनाएं नहीं माना जाता था। लेकिन किसी धूमकेतु का दिखना, तारों का टूटना, ग्रहों की वक्र गति और ग्रहण जैसी खगोलीय घटनाओं को अपशकुन माना जाता था। लोगों को सर्वाधिक डर सूर्य और चंद्रमा के पूर्ण ग्रहण से लगता था। हमारे पूर्वजों ने इन खगोलीय घटनाओं का कारण ढूंढने के जो प्रयास किए, उनमें इन आकाशीय अनियमितताओं को अनिष्टकारी मान लिया गया।

मानव मस्तिष्क निश्चय ही इतना उर्वर है कि धरती पर होने वाली आपदाओं और इन खगोलीय घटनाओं के बीच परस्पर सांख्यिकीय संबंध स्थापित कर सके। मगर सांख्यिकीय संबंध दो तरह के होते हैं : भ्रामक और वास्तविक। वास्तविक सांख्यिकीय सहसंबंध वे हैं जिनकी व्याख्या 'कारण और कार्य' संबंधों से की जा सके और प्रभावों को मात्रात्मक दृष्टि से उचित

ठहराया जा सके। भ्रामक सांख्यिकीय सहसंबंध वे हैं जिनकी मात्रात्मक दृष्टि से व्याख्या न की जा सके, भले ही वे कारण और कार्य संबंधों से जुड़े प्रतीत होते हों। इस तरह, दो प्रकार की सूचनाओं या घटनाओं के बीच गुणात्मक संबंधों के पक्ष में तर्क देकर, पर्याप्त मात्रात्मक प्रमाण के बिना, आम लोगों को बेवकूफ बनाया जा सकता है।

ग्रहणों के संदर्भ में हम बताएंगे कि वास्तविक और भ्रामक सहसंबंधों में कितना अंतर है। यह न सिर्फ इस घटना को समझने के लिए आवश्यक है, बल्कि ग्रहणों के बारे में हजारों साल से प्रचलित अंधविश्वासों के मूल और इनकी दृढ़ स्थापना को जानने के लिए भी जरूरी है।

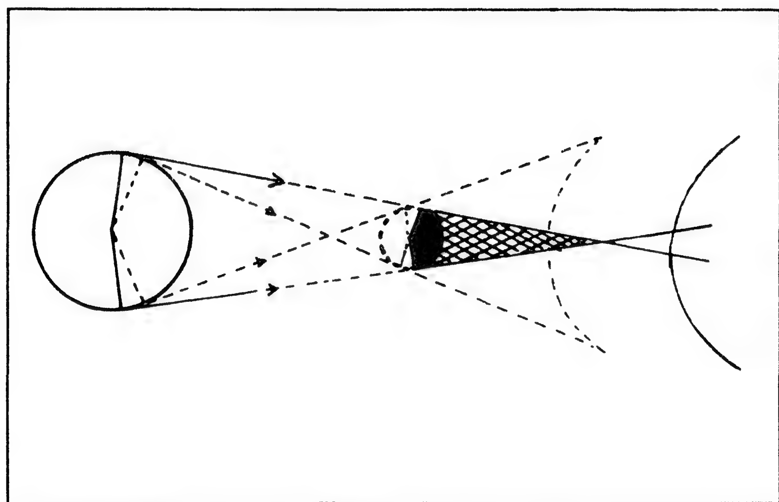
आमतौर पर माना जाता है कि आधुनिक विज्ञान के आगमन से अनेक ऐसी घटनाओं का विश्लेषण संभव हो सका है, जिनकी पहले व्याख्या नहीं



चित्र 1 : यह चित्र चंद्रग्रहण का है। दाईं ओर सूर्य है और बाईं ओर चंद्रमा। बीच में पृथ्वी है। जब चंद्रमा पृथ्वी की छाया से गुजरता है, तो ग्रहण लगता है। चंद्रमा जब इस छाया में प्रवेश करता है, तब आंशिक चंद्रग्रहण शुरू होता है। जब यह छाया के मध्य में आ जाता है, तब पूर्णग्रहण होता है। सूर्य और पृथ्वी को छूने वाली स्पर्शरेखाओं की दिशा में जो किरणें चलती हैं, वे इन दो पिंडों के अलग–अलग भागों से निकलती हैं। कुछ पाठ्यपुस्तकों में यह चित्र गलत दर्शाया गया है।

की जा सकी थी। जैसे–जैसे हमारे ज्ञान की सीमा बढ़ती गई, हम नव प्रौद्योगिकी के संसार में समाते चले गए। प्रौद्योगिकी के इस युग में परिवर्तन की गति काफी तेज है। जो परिवर्तन कभी दशकों में हुआ करते थे, अब साल या महीनों में होने लगे हैं।

नई प्रौद्योगिकी का बच्चों पर काफी प्रभाव पडा है। मीडिया के विभिन्न क्षेत्रों का लगातार सामना होने के कारण आज के बच्चों में जिज्ञासा अधिक होती है। इस कारण आज मां–बाप को अपने बच्चों के सवालों का जवाब देने में कठिनाई होती है। मां–बाप के लिए पुरानी पीढ़ी की परंपराओं को एक झटके में तोड़ देना आसान नहीं होता। दूसरी ओर, बच्चों के धारदार तर्कों और वैज्ञानिक विश्लेषणों के सामने वे उन परंपराओं को उचित भी नहीं



चित्र 2 : यह चित्र सूर्यग्रहण का है। इसमें सूर्य बाईं ओर और पृथ्वी दाईं ओर है। चंद्रमा इन दोनों के बीच स्थित है। पृथ्वी की दो स्थितियां दर्शायी गई हैं – पहली बिंदु रेखा से और दूसरी काली रेखा से। चंद्रमा की उत्केंद्रता (एक्सेंट्रिसिटी) पृथ्वी की कक्षा की तुलना में करीब साढ़े तीन गुना अधिक होती है। पृथ्वी पर चंद्रमा की प्रच्छाया या इसके शंकु के विस्तार के कारण ग्रहण लगता है। यदि पृथ्वी की स्थिति प्रच्छाया के बीच है, तो पृथ्वी के उतने हिस्से से पूर्ण सूर्यग्रहण दिखाई देगा। यदि पृथ्वी पर प्रच्छाया के शंकु का विस्तार पहुंचता है, तो वलयाकार ग्रहण लगेगा।

ठहरा सकते।

आजकल हाईस्कूल की किताबों में भी ग्रहणों और उनके प्रभावों की जानकारी दी जाती है। फिर भी भारत के ज्यादातर लोग ग्रहणों को देखने से डरते हैं। ऐसा नहीं कि प्राचीन काल में भारतीयों को ग्रहणों के बारे में जानकारी नहीं थी। पंद्रह सौ साल पहले प्रसिद्ध भारतीय खगोलविद आर्यभट–प्रथम (499 ई.) ने अपनी पुस्तक *आर्यभटीय* के 'गोलाध्याय' में इनका स्पष्ट उल्लेख किया था – जब चंद्रमा पर पृथ्वी की छाया पड़ती है, तब चंद्रग्रहण होता है (चित्र–1), और जब पृथ्वी पर चंद्रमा की छाया पड़ती है तब सूर्यग्रहण होता है (चित्र–2)*। आर्यभट ने ग्रहणों की तिथि और अवधि के आकलन का सूत्र भी दिया है। इसके बावजूद ग्रहणों को देखने के प्रति आम लोगों की धारणा में ज्यादा बदलाव नहीं आया है। इसके लिए लोगों की अज्ञानता को दोषी ठहराने के बजाय इन असंगत परंपराओं के प्रचलित रहने के कारणों पर ध्यान देना उचित होगा।

ग्रहण संबंधी अंधविश्वास की जड़ें कितनी गहरी हैं, इसका पता इसी बात से लगता है कि पूर्ण (खग्रास) सूर्यग्रहण जैसी घटना हमारे अखबारों की सुर्खियां बन जाती है। दुर्भाग्यवश, भारत में मीडिया का रुख भी बहुसंख्य लोगों के मतानुकूल है। इसका प्रमाण 26 फरवरी, 1980 को पूर्ण सूर्यग्रहण के दौरान मिल गया था। दक्षिण भारत के कुछ हिस्सों में जब ग्रहण नजर आया, तो दूरदर्शन ने उस अवधि में फिल्म का प्रसारण करना उचित समझा, ताकि लोग घरों में ही बंद रहे! महानगरों की सड़कें भी सूनी हो गई थीं। इसका प्रमुख कारण था – ग्रहण को नंगी आंखों से न देखने की सदियों पुरानी परंपरा। उल्लेखनीय है कि भारतीय उपमहाद्वीप में वह पूर्ण सूर्यग्रहण 82 साल बाद दिखा था !



* छादयति शशी सूर्यं, शशिनं महती च भूच्छाया ।

ग्रहणों से जुड़े दुनियाभर के अंधविश्वासों की एक झलक

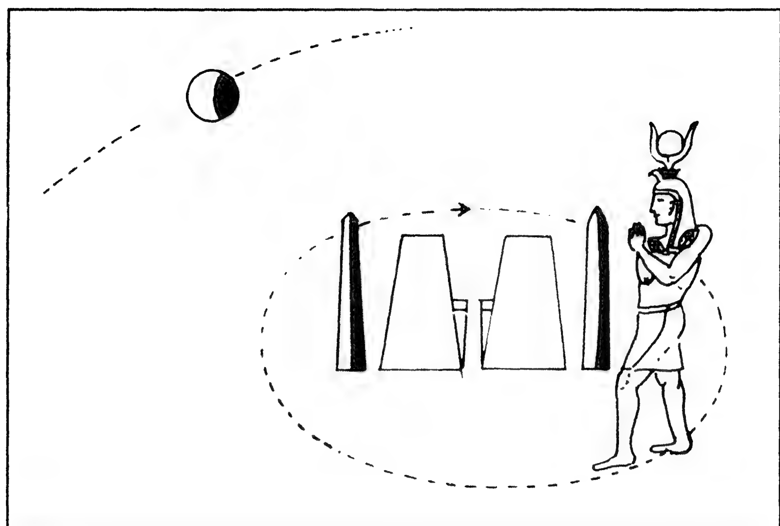
इस अध्याय में हम दुनिया के विभिन्न हिस्सों में प्रचलित ग्रहणों से जुड़े अंधविश्वासों का संक्षेप में उल्लेख करेंगे। स्थानीय धर्माधिकारी या शासकगण किन कारणों से इन अंधविश्वासों को मानते आए हैं, इसके बारे में भी जानकारी दी जाएगी।

प्राचीन काल से विभिन्न जनसमुदायों में ग्रहणों की अलग–अलग व्याख्या की जाती रही है। यह व्याख्या उन समुदायों के धार्मिक कर्मकांड से प्रभावित होती रही है।

अधिकतर संप्रदायों में सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण को महामारी, युद्ध आदि जैसी विपत्तियों के आगमन का सूचक माना जाता रहा है। ग्रहण के समय क्या करना चाहिए और क्या नहीं, यह आम परंपरा रही है। विभिन्न धर्मों में यह परंपरा अलग–अलग है। इसका मकसद ग्रहण जैसी विध्वंसकारी घटना से बचना और उसे जल्दी समाप्त करना है।

प्राचीन मिस्र में (2650 ई. पू.) फेरो यानी शासक का राजकुल स्वयं को सूर्य का वंशज मानता था। इस कुल के सदस्य स्वयं को धरती पर सूर्य देवता का प्रतिनिधि समझते थे। जब तक सूर्य में ग्रहण लगा रहता था, तब तक राजा ओसिरिस् के मुख्य मंदिर की परिक्रमा करता रहता था। इसके पीछे मान्यता

थी कि सूर्य को आकाश में बिना किसी अवरोध के निरंतर भ्रमण करना चाहिए। जब सूर्य ग्रहण का शिकार हो जाता है, तब उसके मानव प्रतिनिधि, फेरो को सूर्य की निरंतरता बनाए रखने में मदद करनी चाहिए (चित्र 3)।



चित्र 3 : मिस्र के राजा स्वयं को सूर्य देवता का मानवावतार मानते थे। मान्यता थी कि ग्रहण के दौरान सूर्य की गति बाधित होती है। उसकी निरंतरता बनाए रखने के लिए राजा सूर्य–मंदिर की परिक्रमा करता था।

बेबीलोनी सभ्यता के दौरान वहां के ज्योतिषियों ने ग्रहणों के सही समय का आकलन करने में महारत हासिल कर ली थी। उन्होंने ग्रहणों के *सारोस्* चक्र का भी पता लगाया था। इस चक्र से पता चलता है कि 6585.321 दिनों (18 वर्ष और 10.3 या 11.3 दिन — यह इस बात पर निर्भर करता है कि बीच में लीप–ईयर चार हैं या पांच) में ग्रहणों की पुनरावृत्ति होती है। बेबीलोनवासियों ने 1800 ई.पू. से ही खगोलीय घटनाओं की सूक्ष्म जानकारी का लेखा–जोखा रखना शुरू कर दिया था। यह खगोलीय विवरण मिट्टी के हजारों फलकों पर अंकित था। वे मौसम का भी चार्ट बनाते थे। उन्होंने सभी

प्राकृतिक आपदाओं और बेबीलोन के शासकों के उत्थान व पतन का रिकॉर्ड भी तैयार किया था। रिकॉर्ड के रूप में मिट्टी के कुछ फलक ईसा पूर्व आठवीं सदी तक मौजूद थे। असीरिया और ग्रीकवासियों ने सृष्टि का एक सिद्धांत तैयार किया था। ग्रीक इतिहासकार हीरोडोटस् (लगभग 485–425 ई.पू.) ने मिलेटसवासी थेलस् का जिक्र किया है, जिसने भविष्यवाणी की थी कि 585 ई. पू. में पूर्ण सूर्यग्रहण होगा। लीडिया और मेडेसवासियों के बीच इस सूर्यग्रहण के कारण युद्धविराम हो गया था। जिस समय ग्रहण लगा, उस समय दोनों सेनाएं रणभूमि में थीं।

बेबीलोनवासी ग्रहणों को अतिमहत्वपूर्ण शकुन मानते थे। यद्यपि वे ग्रहण की तिथि और जगह (जहां से ग्रहण आकाश में दिखाई देता है) का ब्योरेवार रिकॉर्ड करते थे, फिर भी यह संभावना है कि इन घटनाओं को 'चांद में बदलता सूर्य' शीर्षक के तहत रिकॉर्ड किया जाता हो। इस शीर्षक का अर्थ 'धूल भरी आंधी' भी हो सकता है।

संख्या के हिसाब से देखा जाए तो सूर्यग्रहण की तुलना में चंद्रग्रहण संबंधी शकुन ज्यादा हैं। पूर्ण चंद्रगहण को विश्वव्यापी माना जाता था, क्योंकि यह पृथ्वी के बड़े भूभाग से नजर आता था। पूर्ण ग्रहण होने के कारण सब जगह इसका प्रभाव भी समान माना जाता था। आंशिक ग्रहण की स्थिति में चंद्रमा का एक हिस्सा (पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी या दक्षिणी) निष्प्रभ हो जाता है और वह हिस्सा नजर नहीं आता। यह जानकर कि चंद्रमा की किस दिशा के हिस्से पर ग्रहण का ज्यादा असर होगा, बेबीलोनवासी यह पता लगाते थे कि किस पड़ोसी राज्य की स्थिति अच्छी या खराब रहेगी। उनके सार–संग्रह *एनुमा अनु एनलिल* में इन विवरणों का उल्लेख है। चंद्रग्रहण के रिकॉर्ड में वर्ष, माह, तिथि, दिन, रात का पहर, हवा का रुख और ग्रहण लगे चंद्रमा के निकटतम तारे की स्थिति — इन सबका ब्योरा रहता था। इन आंकड़ों से शकुन का स्वरूप सुनिश्चित किया जाता था। उदाहरणस्वरूप, सिमान्नु माह में सुबह से ठीक पहले घटित एक चंद्रग्रहण के बारे में यह विवरण मिला है :

ग्रहण यदि सुबह के प्रहर में है तो रोग फैलेंगे ...। सुबह का प्रहर एलाम

की तरफ है, 14 वां दिन एलाम पर है, सिमान्नु, एक एम्मान्नु है, दूसरा हिस्सा अक्कद की तरफ है ...। यदि कोई ग्रहण सुबह के वक्त घटित होता है और पूरे प्रहर टिकता है, साथ ही उत्तरी हवा बहती है, तो उसे देखने वाला बीमार व्यक्ति चंगा हो जाएगा। इसके विपरीत, यदि ग्रहण प्रथम दिशा से आरंभ होता है और दूसरी दिशा में टिकता है, तो एलाम का विनाश होगा। गुती अक्कद नहीं पहुंचेगा ...। जब ग्रहण दूसरी दिशा में शुरू होकर वहां टिकता है, देवता देश पर कृपा करेंगे। जब ग्रहण सिमान्नु के उत्तर में होगा, तब बाढ़ आएगी...।

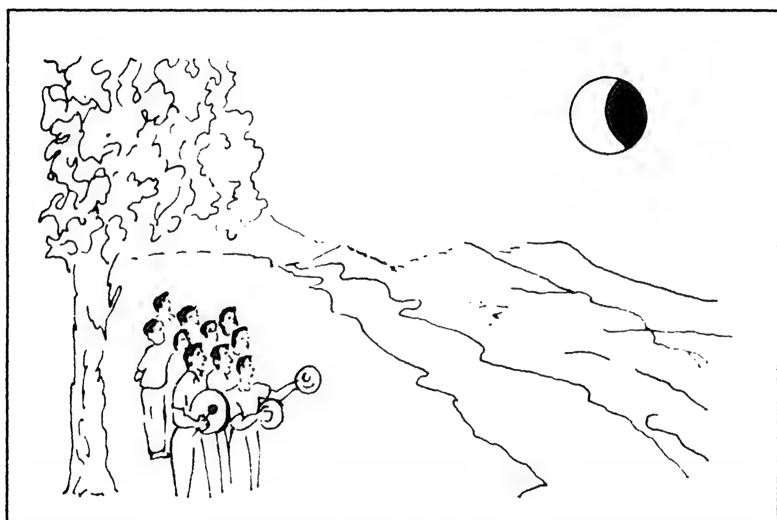
जो विवरण ज्यादा विस्तृत थे, उनमें राजाओं को यह चेतावनी भी दी जाती थी कि किसी युद्ध विशेष में उनकी क्या स्थिति होगी, किस भौगोलिक दिशा में युद्ध करने पर उनकी विजय होगी, इत्यादि।

इस तरह के विवरण का तत्कालीन फलित–ज्योतिषियों और राजाओं के लिए काफी महत्व होता था। यहां उल्लेखनीय है कि प्राचीन काल में खगोलशास्त्र और फलित–ज्योतिष, दो अलग विधाएं नहीं थीं। दोनों का अध्ययन साथ–साथ किया जाता था। हमारा लक्ष्य इनमें से खगोलशास्त्र को अलग करना और इस बात का युक्तिसंगत कारण तलाशना है कि कुछ रिवाजों ने किस तरह फलित–ज्योतिष का रूप ले लिया। इस तरह के विवरणों से यह पता चलता है कि उन दिनों ग्रहण का सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया जाता था। बेबीलोनवासियों ने ई.पू. सातवीं सदी से पहले ही ग्रहणों की भविष्यवाणी करने की कला में महारत हासिल कर ली थी। उदाहरणस्वरूप, टॉमसन (पृष्ठ 273) ने लिखा है, "14 वें दिन एक ग्रहण होगा। यह एलाम और अमरू के लिए अनिष्टकारक है, लेकिन राजा के लिए शुभ है। यह शुक्र के बिना नजर आएगा। हे मेरे राजा, मैं तुम्हें कहता हू : एक ग्रहण लगेगा।"

जिस दिन ग्रहण लगा, उस दिन आकाश में बादल छाए थे। इस कारण ग्रहण नजर नहीं आया। इसका कारण बताया गया : "अशुर के अधिष्ठाता देवता ने जान लिया कि देश को कोई खतरा नहीं है और इसके राजा ने क्षितिज पर बादलों का पर्दा लगा दिया, जिससे राजा या उसकी प्रजा को अनावश्यक

कष्ट न हो।" यह व्याख्या महत्वपूर्ण है, क्योंकि उस समय राजा बीमार था और मिस्र में एक विफल सैनिक अभियान से लौटा था।

खल्दियावासियों के अनुसार, चंद्रग्रहण का होना इस बात का सूचक है कि चंद्रमा नाराज है। परिणामस्वरूप, बीमारियां होंगी, अकाल पड़ेगा, युद्ध होगा, भूकंप जैसी प्राकृतिक आपदाएं आएंगी। ग्रहण देखने वालों को इन विपत्तियों का सामना करना पड़ता, इसलिए लोगों को ग्रहणकाल में घरों में ही रहने का निर्देश दिया गया।



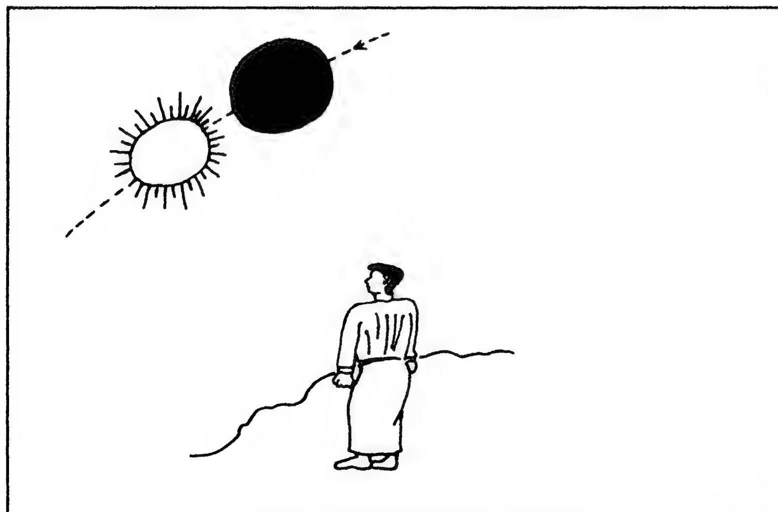
चित्र 4 : प्राचीन रोम में मान्यता थी कि दुरात्माओं की वजह से ग्रहण लगता है। इसलिए ग्रहण के दौरान वे शोर मचाते थे, ताकि दुरात्मा भाग जाए।

ग्रीकवासी भी ग्रहण को अपशकुन का संकेत मानते थे। उनकी मान्यता थी कि ग्रहण तभी लगता है, जब सूर्य देवता और चंद्र देवता, दोनों नाराज हो जाते हैं। अनेक बार ऐसा होता था कि एक जगह से ग्रहण नजर आता था और दूसरी जगह से नहीं। ऐसे में जो अपने पड़ोसियों के हाथों पराजित हो जाते थे, वे चंद्रगहण को अपशकुन मानते थे। कहा जाता है कि यदि ग्रीकवासी युद्ध के दौरान ग्रहण देख लेते थे, तो युद्ध रोक देते थे। कभी–कभी तो रणभूमि

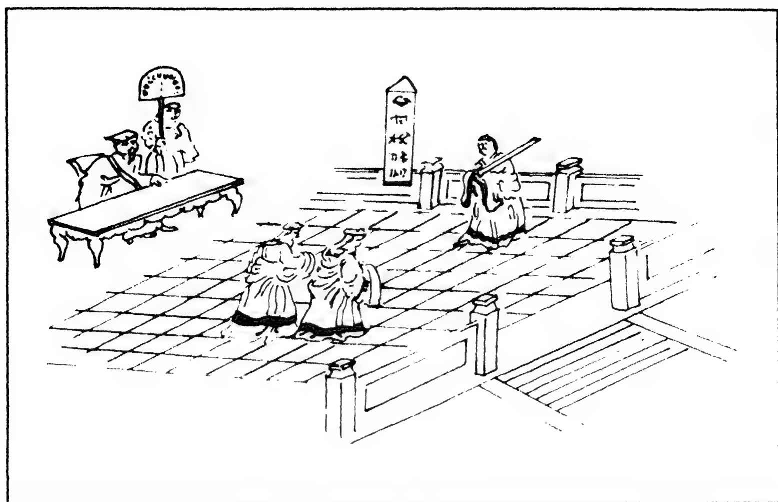
से पीछे भी हट जाते थे।

रोमन इतिहासकार लेवी (59 ई.पू.–17 ई.) ने लिखा है कि चंद्रगहण के दौरान लोगों का चीखना–चिल्लाना भी एक प्रथा थी। मान्यता थी कि चांद पर आकाशीय दानवों की छाया पड़ने से ग्रहण लगता है और शोर मचाने पर वह दानव भाग जाता है। रोम के ही एक अन्य इतिहासकार टेसिटस् (55–117 ई.) ने भी ऐसी प्रथा का जिक्र किया है। उसके मुताबिक लोग ढोल, मजीरा, नगाड़ा आदि बजाकर शोर करते थे, ताकि ग्रहण की अवधि कम हो जाए (चित्र 4)।

तूरीनवासियों में भी ऐसा ही प्रचलन था। आर्मेनियाई लोगों का मानना था कि पृथ्वी और चंद्रमा के बीच किसी काले ग्रह के आ जाने से ग्रहण लगता है (चित्र 5)। इस तरह के विचार अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय और सुकल्पित थे। क्योंकि इससे इस तथ्य की व्याख्या होती है कि सूर्य या चंद्रमा के ग्रहण



चित्र 5 : आर्मेनियावासियों का विश्वास था कि सूर्य या चंद्रमा के सामने किसी काले ग्रह के आ जाने से ग्रहण लगता है । इस अवधारणा से इस तथ्य की व्याख्या होती है कि सूर्य या चंद्रमा के ग्रहण लगे हिस्से का किनारा गोल होता है ।



चित्र 6 : सूर्यग्रहण के गलत दिन की भविष्यवाणी करने के कारण चीन के राजा शि: हुआङ्–ती ने ह्सी और ह्सो भाइयों को मृत्युदंड दिया था।

लगे हिस्से का आकार गोल क्यों होना चाहिए। किसी दैत्य द्वारा सूर्य या चंद्रमा को निगलने के तर्क से इस बात की पुष्टि नहीं होती कि दोनों अंतरापृष्ठ वृत्ताकार क्यों होते हैं। उन दिनों भी सूर्य और चंद्रमा, दोनों का आकार गोल माना जाता था। दोनों को प्रकाशमान भी माना जाता था। इसलिए संभव है कि दैत्य की आकृति भी गोल मानी जाती हो, भले ही वह काला हो। चंद्रमा की कलाओं में जिस तरह परिवर्तन होता है, चंद्रग्रहण का आकार उस तरह नहीं बदलता। संभवतः इसी कारण प्राचीन क़ाल में यह धारणा फैली कि ग्रहण के दौरान चंद्रमा पर काली छाया पड़ती है।

चीनी सभ्यता में खगोल–विज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। लेकिन वहां इसके विकास की सही तस्वीर खींचना मुश्किल है, क्योंकि बाद के चीनी लेखकों ने समकालीन विचारों को पुराना बताया है। चीन में 213 ई.पू. में तत्कालीन सम्राट शि: हुआङ्–ती के निर्देश पर खगोल–विज्ञान संबंधी अनेक पुस्तकें जला दी गईं। ये पुस्तकें लगभग दो हजार साल में तैयार की गई थीं। बाद में हान् काल में अनेक पुरानी परंपराएं पुनः शुरू हुईं। अनेक पुस्तकें दोबारा लिखी गईं,

लेकिन दोबारा लिखने में तथ्यों के साथ कुछ हेर–फेर भी हुआ। इसका प्रमुख उदाहरण है, ह्सी और ह्सो भाइयों की कहानी। इन पुस्तकों के मुताबिक इन भाइयों ने ग्रहण की भविष्यवाणी की थी। लेकिन नियत समय पर ग्रहण न होने के कारण उनका सिर धड़ से अलग कर दिया गया (चित्र 6)। जबकि सच्चाई यह है कि जन–आंदोलन में भाग लेने के कारण इन भाइयों की हत्या की गई थी। परवर्ती लेखकों ने इसे दो ऐसे खगोलशास्त्रियों की धैर्य भंग करने वाली कहानी में तब्दील कर दिया जिन्होंने अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया और सूर्यग्रहण की सही भविष्यवाणी करने में विफल रहे। फलतः, दंडस्वरूप उनका शिरश्छेदन कर दिया गया। इस कथा में दिन (शरद का पहला दिन) और चंद्रमा की स्थिति (यह वृश्चिक के सिर के पास था) का भी जिक्र था, अतः आधुनिक काल के खगोल–विज्ञानियों ने ग्रहण की सही तिथि का आकलन कर लिया। वह ग्रहण 22 अक्तूबर, 2137 ई. पू. को घटित हुआ था। लेकिन इतने प्राचीन काल में सूर्यग्रहण की बिल्कुल सही तिथि की गणना की अपेक्षा करना उचित नहीं होगा। वैसे, सवाल तो मूल कथा की सत्यता पर भी उठाए जा सकते हैं। चीनवासियों की जीवन पद्धति पर विश्वोत्पत्ति संबंधी विचारों का प्रभाव अधिक था। उनकी मान्यता थी कि धरती का आकार चौरस है और चीन इसके केंद्र में स्थित है। वे चीन को स्वर्ग का भी केंद्र मानते थे।

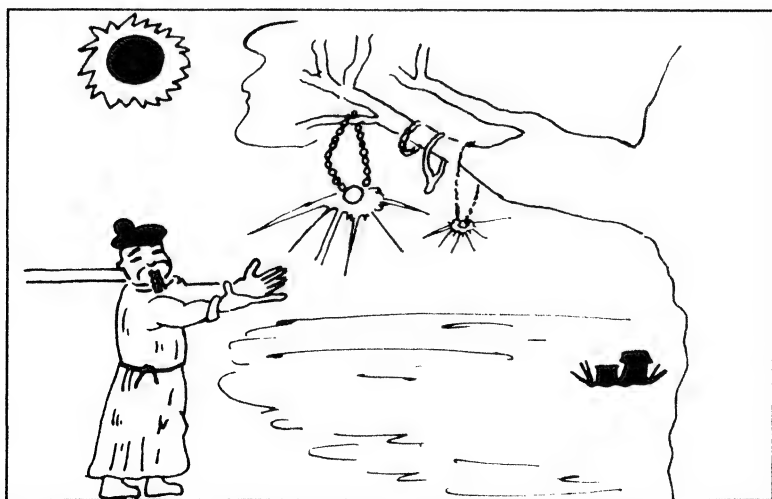
देवता शाङ्–ती यहां संपूर्ण पृथ्वी के सम्राट के रूप में शासन करता है। इसलिए सम्राट को स्वर्गपुत्र माना जाता था। धरती और स्वर्ग के मध्य समरसता बनाए रखने के लिए वह अपने पूर्वजों की परंपराओं और संस्कारों का पालन करता था। तब माना जाता था कि एक क्षेत्र में दुर्व्यवस्था फैलने पर दूसरे क्षेत्र में भी गड़बड़ियां होती हैं। ग्रहण या धूमकेतु का आगमन यह बताता था कि सम्राट और उसके अधिकारियों ने कोई पाप किया है, राजकाज में गलती की है या किसी रस्म–रिवाज में लापरवाही बरती है। खगोल–विज्ञान पर चौथी सदी ई. पू. की पुस्तक *शिः–शेन* में लिखा है :

जब कोई बुद्धिमान राजकुमार सिंहासन पर बैठता है, तो चंद्रमा की गति भी ठीक रहती है। यदि राजकुमार बुद्धिमान नहीं है या उसके मंत्री अपने

अधिकारों का दुरुपयोग करते हैं, तो चंद्रमा की गति में भी व्यवधान उत्पन्न होता है और उसकी दिशा बदल जाती है। जब बड़े अधिकारी जनता और राजतंत्र के हितों के विरुद्ध कार्य करते हैं, तो चंद्रमा उत्तर या दक्षिण की ओर पथभ्रष्ट हो जाता है। जब चंद्रमा पर चकत्ते दिखते हैं, तो इसका अर्थ है राजा सजा देने में ढील बरत रहा है... ।

चीन में बहुत दिनों तक लोग यह विश्वास करते रहे कि जब कोई कुत्ता या अन्य जानवर सूर्य या चंद्रमा को काटता है (उस पर अपनी छाया डालता है), तो ग्रहण लगता है। उस जानवर को भगाने के लिए वे जोर–जोर से घंटियां बजाते थे। सूर्यग्रहण को अपशकुन का संकेत माना जाता था, इसलिए ग्रहणकाल में लोग उपवास रखते थे, ताकि इसकी पुनरावृत्ति न हो।

जापान में सूर्यग्रहण के दौरान शिंतो लोग तावीज का प्रयोग करते थे। यह बहुमूल्य पत्थरों का हार होता था, जिसे पवित्र क्लॉरिया वृक्ष की शाखा पर लटकाया जाता था। इसके पीछे धारणा यह थी कि ग्रहण के दौरान सूर्य की



चित्र 7 : जापानवासियों का मानना था कि ग्रहण के दौरान सूर्य की तीव्रता कम हो जाती है। इस कमी को पूरा करने के लिए वे पवित्र क्लॉरिया वृक्ष पर बहुमूल्य चमकीले पत्थरों के हार लटकाते थे।

जो रोशनी नष्ट होती है, उसकी कमी इन पत्थरों की चमक पूरी कर देगी (चित्र 7)। कुछ स्थानों पर ग्रहण के दौरान पर्वाग्नि या होली जलाई जाती थी। इसका मकसद भी यही होता था कि ग्रहण के समय सूर्य की रोशनी की जो क्षति होती है, उसकी भरपाई हो जाए और ग्रहणकाल का शीघ्र अंत हो जाए, जो सचमुच ही होता था!

कुछ एस्कीमो जनजातियों में भी यह मान्यता थी कि ग्रहण पृथ्वी के लिए अशुभ का संकेत है। उनका विश्वास था कि अपने देवता के सामने घर के सभी बर्तन उलटकर न रखने से महामारी फैलगी (चित्र 8)। आज भी एस्कीमो महिलाएं ग्रहण के समय इस प्रथा का पालन करती हैं।

इसका कारण यह माना जाता था कि जिस तरह मनुष्य कुछ समय के लिए बीमार होता है, उसी तरह सूर्य व चंद्रमा भी ग्रहण के समय रोगग्रस्त हो जाते हैं। इनसे निकलने वाली किरणें यदि बर्तनों पर पड़ती हैं, तो एस्कीमो और उनके देवता भी उस रोग से ग्रस्त हो जाएंगे।

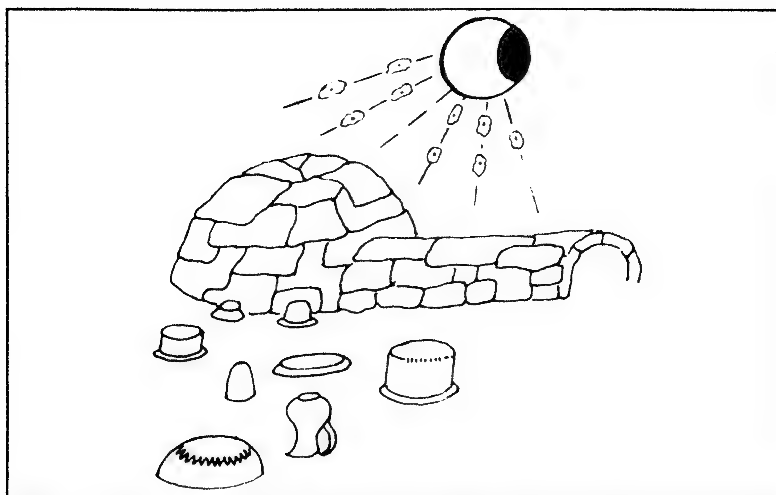
अफ्रीका के पश्चिमी तट के लोगों का मानना था कि सूर्य, चंद्रमा के पीछे–पीछे चलता है। जब चंद्रमा पर सूर्य की छाया पड़ती है, तो चंद्रग्रहण होता है। इसलिए ग्रहण के समय वे रास्ते पर एकत्र होकर चिल्लाते थे : 'उसे छोड़ दो', 'चले जाओ' आदि।

रेड इंडियनों के ओजिबावा कबीले का मानना था चंद्रमा या सूर्य कुछ समय के लिए बुझ जाता है, इसलिए सूर्यग्रहण लगता है। अतः ग्रहण के दौरान वे सूर्य की तरफ जलता हुआ तीर छोड़ते थे, ताकि वह पुनः प्रज्वलित हो सके (चित्र 9)।

ताहिती द्वीप–समूह के वासियों में यह धारणा प्रचलित थी कि चंद्रग्रहण दुरात्माओं द्वारा उत्पन्न किसी आसन्न संकट का संकेत है। चंद्रमा को इनके चंगुल से मुक्त कराने के लिए वे अपने पूजास्थलों पर जाकर प्रार्थना करते थे।

श्रीलंका के आदिवासी भी सूर्यग्रहण को किसी बुरी घटना का संकेत मानते हैं। ग्रहण के दिन वे उपवास रखते हैं।

नीलगिरि की टोडा जाति का विश्वास है कि चंद्रमा पर एक खरगोश रहता



चित्र 8 : एस्कीमो लोगो का विश्वास था कि ग्रहण के दौरान सूर्य या चंद्रमा से कीटाणुयुक्त किरणें निकलती हैं। इनसे बचने के लिए वे अपने बर्तन उलटकर रखते थे।

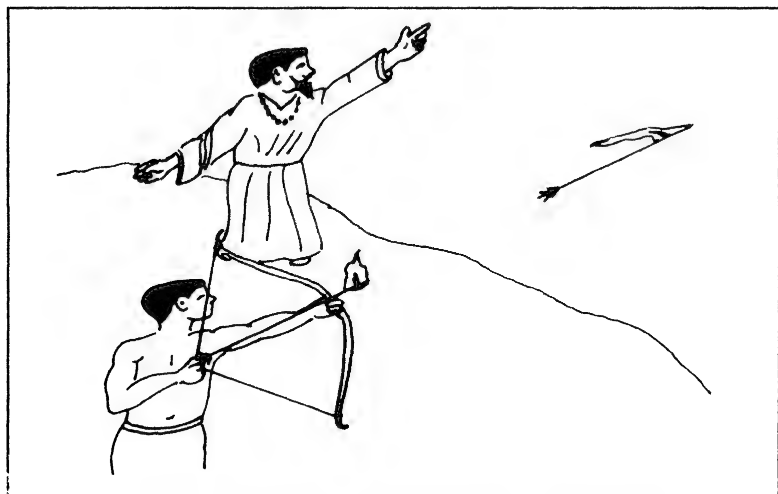
है। पूर्णिमा के दिन चंद्रमा को ध्यान से देखने पर वैसी आकृति कुछ–कुछ नजर भी आती है। उनके मुताबिक जब कोई सांप चंद्रमा को निगल जाता है, तो उसे ग्रहण लगता है। सांप को भगाने के लिए वे शोर मचाते हैं। ग्रहण के दौरान वे कुछ खाते भी नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने सूर्यग्रहण कभी नहीं देखा है।

असम और बिहार की माओरी जाति में यह धारणा प्रचलित है कि चंद्रग्रहण शत्रु पर उनकी विजय और शत्रु का किला ढहने का संकेत है। जाहिर है कि उनके शत्रु भी चंद्रग्रहण की ऐसी ही व्याख्या करते होंगे। लेकिन यहां यह बात ध्यान में रखनी होगी कि युद्ध हमेशा दो समूहों, धर्मावलंबियों या विरोधी शासकों के बीच होता है। यदि इनमें से एक को चंद्रग्रहण देखने के बाद विजय मिलती है, भले ही वह एक संयोग हो, तो उसके लिए ग्रहण को विजय का प्रतीक मानना स्वाभाविक है। ऐसे में पराजित पक्ष ग्रहण को अशुभ का संकेत मानता होगा।

बिहार और मध्यप्रदेश के बस्तर क्षेत्र की मुंडा जनजातियों में प्रचलित धारणा बिलकुल अलग है। उनके मुताबिक आकाश में 'धनको' नामक एक

दानव है। सूर्य और चंद्रमा उससे ऋण लेते रहते हैं। जब ये समय पर ऋण नहीं चुका पाते, तो धनको कुछ समय के लिए उन्हें कैद कर लेता है। अतः ग्रहण के समय लोग अपने बर्तन, चावल और हथियार आंगन में रख देते हैं, ताकि सूर्य और चंद्रमा उन्हें स्वीकार कर दानव का ऋण चुका देंगे।

पवित्र *कुरान* की *पुनर्जीवन* (अल्–कयामत) सूरा में लिखा है कि पुनर्जीवन दिवस से पहले चंद्रमा को ग्रहण लगेगा और सूर्य व चंद्रमा एक साथ हो जाएंगे (75 :7–11)। यह उक्ति विरोधाभासी या महत्वहीन लग सकती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि इन शब्दों की व्याख्या कैसे की जाती है। *बाइबिल* में भी (मैथ्यू 24 : 29) यीशू के पुनः अवतार के बारे में ऐसा ही उल्लेख है। पैगंबर ने ग्रहण के दौरान लोगों को प्रार्थना करने और दान देने की सलाह दी थी – चाहे वह सूर्यग्रहण (कुसूफ़) हो या चंद्रग्रहण (खुसूफ़)। प्रार्थना की पुस्तक (सलत, पृष्ठ 66–76) में किसी भी ग्रहण के समय दो रकअत प्रार्थना करने को कहा गया है। पैगंबर स्वयं प्रत्येक रकअत में दो रुकूअ प्रार्थना करते थे। इसका मूल उद्देश्य मनुष्य के हृदय में आध्यात्मिक लौ को पुनः प्रज्वलित करना

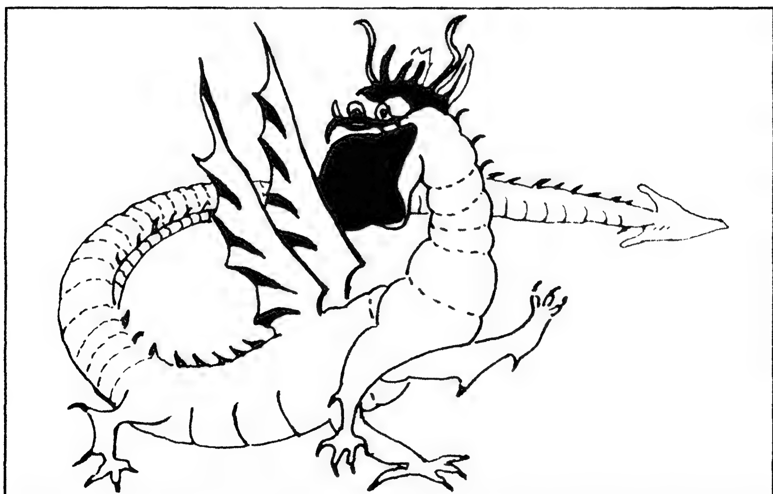


चित्र 9 : रेड इंडियनों का मानना था कि ग्रहण के दौरान सूर्य या चंद्रमा बुझ जाते हैं। उन्हें पुनः प्रज्वलित करने के लिए वे उनकी ओर जलता हुआ तीर छोड़ते थे।

था। ग्रहण के समय खगोलीय आध्यात्मिक प्रकाश कम हो जाता है।

पैगंबर ने यह भी कहा था एक देवतुल्य धर्म–प्रवर्तक (महदी) आएगा। उसके आने की सूचना होगी–रमजान की तेरहवीं रात को चंद्रग्रहण और रमजान के अट्ठाइसवें दिन सूर्यग्रहण (दरकुतानी, भाग 1, पृष्ठ 188)। दरअसल, इस्लाम के प्रारंभिक दिनों में ग्रहण ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

जिस साल पैगंबर मुहम्मद का जन्म हुआ (569–570 ई.), उस साल पूर्ण सूर्यग्रहण लगा था (24 नवंबर, 569 को)। जिस स्थान पर पैगंबर का जन्म हुआ था, ग्रहण की पूर्णता का पथ वहां से एक हजार किलोमीटर के दायरे में था। तब यह माना जाता था कि पूर्ण सूर्यग्रहण पुराने राजकुल के अंत और नए कुल के उदय का प्रतीक है, हालांकि कुरान में ऐसे किसी अंतरसंबंध का जिक्र नहीं है। 22 जनवरी, 632 को पैगंबर के दूधमुंहे बच्चे की मौत हो गई। उस दिन सूर्य को वलयाकृति ग्रहण लगा था। उसके बाद 2 जुलाई, 632 को पुनः वलयाकृति सूर्यग्रहण लगा। उस दिन मुआवैया ने अली (पैगंबर के



चित्र 10 : हिंदुओं, बौद्धों, जैनियों व चीनवासियों की मान्यता थी कि ग्रहण के समय सूर्य या चंद्रमा को कोई दैत्य या राहु ग्रस लेता है ।

दामाद) के खिलाफ बग़ावत कर नेतृत्व अपने हाथों में लिया। मुआवैया मक्का

में अली के मुख्य शत्रु का बेटा था। उसने पैगंबर के पीठासन को मदीना से उठाकर अपनी राजधानी दमिश्क (सीरिया) ले जाने का फैसला किया। लेकिन पीठासन उठाने के समय वलयाकृति सूर्यग्रहण लगने के कारण उसे वहीं छोड़ दिया गया।

आमतौर पर जैन धर्मावलंबी भी ग्रहणों को अपशकुन का संकेत मानते हैं। इसलिए इनके प्रभावों से बचने के लिए उनमें भी कुछ प्रथाएं प्रचलित हैं। पूर्ण सूर्यग्रहण राजा या उच्च पद पर आसीन किसी व्यक्ति की मृत्यु का संकेत माना जाता है। यदि एक माह में दो ग्रहण लग जाएं, तो इसे युद्ध जैसी किसी विभीषिका का निश्चित संकेत माना जाता है। बौद्ध परंपरा के मुताबिक राहु और केतु नामक दो दानव जब सूर्य और चंद्रमा को ग्रस लेते हैं, तो ग्रहण लगता है (चित्र 10)। पालि भाषा में लिखे कई बौद्ध ग्रंथों में इस बात का जिक्र है कि राहु और केतु के कारण ग्रहण लगते हैं। अगले अध्याय में हिंदुओं के विश्वास और उनमें प्रचलित रिवाजों के साथ इस विषय की विस्तृत चर्चा की जाएगी।



हिन्दू शास्त्रों में ग्रहणों की संकल्पना

ईसाइयों में जो स्थान नई *बाइबिल* का और मुसलमानों में *कुरान* का है, हिंदुओं में वही वेदों का है। कुल चार वेदों में ऋग्वेद को प्रायः सबसे पुराना माना जाता है। सूर्य की रोशनी परावर्तित करने के कारण यास्क ऋषि ने चंद्रमा की प्रशंसा की है (निरुक्त 2.6)।[1] राहुगण ऋषि के पुत्र गोतम ऋषि ने भी इस तथ्य की पुनरावृत्ति की है (ऋग्वेद, 1.84.15)।[2] उन दिनों पूर्णिमा को रक और अमावस्या को *सिनिवली* कहा जाता था (सायणभाष्य और ऋग्वेद, 2.33.8)। ग्रहण का कारण स्वर्भानु दैत्य माना जाता था, जो सूर्य पर अंधेरा ला देता था। जब देवतागण सूर्य को नहीं देख सके, क्योंकि यह अंधेरे से घिरा था, तो वे अत्रि ऋषि के पास गए। अत्रि ऋषि ने चार ऋक् मंत्रों का उच्चारण कर अंधेरे को दूर किया (ऋग्वेद, 5.40.5–6)।[3] इससे पहले कि ऋषि चार ऋक् मंत्रों का उच्चारण पूरा करते (इसमें कम से कम 50 सेकंड का समय लगा होगा),

---

1. सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः । –निरुक्त
2. अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।
   इत्था चन्द्रमसो गृहे । – ऋग्वेद, 1.84.16
3. यत् त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
   अक्षेत्रविद् यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः ।।
   स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्तमाना अवाहन् ।
   गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेन ब्रह्मणाविन्ददत्रिः ।।
   –ऋग्वेद, 5.40.5–6.

उनके शिष्यों या पुत्रों ने पृथ्वी पर छाए पूर्ण अंधेरे के बारे में बताया होगा। यह अवस्था कुछ समय तक रही होगी, जो पूर्ण सूर्यग्रहण की वास्तविक अवधि होती है। उसी सूक्त के नौवें ऋक् में कहा गया है कि सिर्फ अत्रि ऋषि के शिष्य और अनुयायी ही जानते थे कि सूर्य पर अचानक छाए अंधेरे को कैसे दूर किया जा सकता है।[4] इसका एक कारण यह हो सकता है कि सिर्फ इन लोगों को ही पूर्ण सूर्यग्रहण की अवधि का आकलन करने की विद्या मालूम होगी।

पंचविंश ब्राह्मण में इसकी विस्तृत व्याख्या की गई है। इसमें बताया गया है कि अत्रि ऋषि चार चरणों में चार ऋक् मंत्रों द्वारा अंधेरे को दूर करते थे। पहले चरण में दूर किया गया अंधेरा लाल भेड़ बनता था (सौर वर्णमंडल); दूसरे चरण में दूर किया गया अंधेरा चांदी–जैसी भेड़ बनाता था (सूर्य का प्रभामंडल); तीसरे चरण में फिर लाल भेड़ बनती थी। अंतिम, अर्थात् चौथे चरण में सफेद भेड़ आ जाती थी (सूर्य का वास्तविक रंग)।

उपवेद या वेदांग कुल छह हैं, जिनमें एक है *वेदांग ज्योतिष*। वेदांग ज्योतिष में खगोलीय समय के विभाजन का तो विस्तृत विवरण है, लेकिन इसमें ग्रहण संबंधी गणना का कोई उल्लेख नहीं है। माना जाता है कि वेदांग ज्योतिष की रचना लगध ऋषि ने 1300 ई.पू. के आसपास की थी।

यहां एक और बात उल्लेखनीय है। *ऋग्वेद*, *सामवेद* या *यजुर्वेद* में राहु का कहीं उल्लेख नहीं है। *अथर्ववेद* (13.2.16–18,28) में केतु का जो विवरण दिया गया है, वह आज के धूमकेतु से मेल खाता है। प्राचीन ज्योतिष विद्या में राहु या केतु का कोई स्थान नहीं था – खासकर जिस तरह पांच ग्रहों, सूर्य और चंद्रमा में बारह घरों का विभाजन किया गया था। लेकिन अष्टोत्तरी दशा में नियमित रूप से गतिशील सात खगोलीय पिंडों के साथ राहु के लिए भी 12 साल का समय नियत किया गया है।

---

4. यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः।
अत्रयस्ततन्वविन्दन् नह्यन्ये अशक्नुवन् ।। —ऋग्वेद, 5.40.9

मूल वाल्मीकि रामायण के अरण्यकांड में पूर्ण सूर्यग्रहण का स्पष्ट विवरण दिया गया है। यह विवरण तेईसवें सर्ग के प्रथम पंद्रह श्लोकों में है। इसमें राहु को ग्रहण का कारण बताया गया है। भगवान राम और खर के बीच युद्ध का जो विवरण है, उसी में इसका उल्लेख है। यह इस प्रकार है :

> *सूर्य के पास गहरे लाल रंग की एक चकत्ती नजर आई; तेजी से शाम होने लगी, और अचानक रात हो गई। कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था, पशु–पक्षी भयभीत हो उठे और जोर–जोर से क्रंदन करने लगे। राहु ने सूर्य को पूरी तरह ग्रस लिया था; सूर्य बिल्कुल निस्तेज प्रतीत हो रहा था। लेकिन सूर्य की काली चकत्ती के चारों ओर एक प्रभामंडल था; कुछ तारे और ग्रह दिखाई पड़ रहे थे...।*

संभवत: व्यासदेव रचित *नवग्रहस्तोत्रम्* में राहु का जो वर्णन दिया गया है, वह इसके पौराणिक विवरण से मेल खाता है। लेकिन केतु का जो विवरण दिया गया है, वह ऐसे धूमकेतु के सदृश है जो तारों और ग्रहों का भक्षण करता है। तारों और ग्रहों के रास्ते में कोई ग्रहण नहीं आ सकता। ये पिंड आपस में ही ग्रहण लगाते हैं।

पांडवों और कौरवों के बीच लड़ाई 18 दिन चली थी। इसका जिक्र करते हुए *महाभारत* में कहा गया है कि युद्ध के दौरान पूर्णिमा और संभावित पूर्ण सूर्यग्रहण (इसे कुरुक्षेत्र के मैदान से देखा जाना था) के बीच सिर्फ 13 दिनों का अंतर था। जैसाकि पहले उल्लेख किया जा चुका है, *कुरान* में भी मुहम्मद के पुन: आगमन के लिए ऐसी ही स्थिति का वर्णन किया गया है। इस तरह का संयोग कम ही बनता होगा और संभव है कि इन धर्मग्रंथों के लेखक इनसे परिचित रहे होंगे।

सूर्य और चंद्र के ग्रहणों के लिए राहु और केतु किस तरह दोषी हैं, *विष्णु पुराण* के प्रथम अंश के नौवें अध्याय में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। एक समय देवताओं और दानवों में लंबे समय तक युद्ध चलता रहा। भगवान विष्णु ने दोनों पक्षों से कुछ समय के लिए युद्ध रोकने का आग्रह किया, ताकि

समुद्र–मंथन किया जा सके। दोनों पक्ष इस पर राजी हो गए। समुद्र–मंथन से जो कुछ निकलता, उसे देवों और असुरों में वितरित किया जाना था। मंथन के लिए रस्सी के रूप में नागराज वासुकि को मंदरागिरि में लपेटा गया। इंद्र के नेतृत्व में देवतागण वासुकि की पूंछ और बलि के नेतृत्व में असुरगण मुंह पकड़कर मंथन करने लगे। समुद्र–मंथन में सबसे पहले घोर विष *हलाहल* निकला। भगवान शिव ने स्वेच्छा से हलाहल को पी लिया, लेकिन उन्होंने इसे अपने कंठ में ही रोके रखा। विष के प्रभाव से उनके कंठ का रंग नीला हो गया। इसी कारण उन्हें नीलकंठ भी कहा जाता है। उसके बाद समुद्र से निकलने वालों में थे — कामधेनु, वारुणी, कल्पवृक्ष, अप्सराएं, चंद्रमा और लक्ष्मी। अंत में अमृत का प्याला लिए धन्वंतरि (ओषधि के जन्मदाता) का आगमन हुआ। असुर अमृत का कलश लेकर भाग गए। तब भगवान विष्णु ने देवताओं के हित में मोहिनी का रूप धारण किया। असुर उसकी सुंदरता से मोहित हो गए और उसे ही अमृत बांटने का काम सौंप दिया। मोहिनी देवताओं में अमृत बांटने लगी। राहु नामक असुर ने अपनी मायाशक्ति से इस बात को जान लिया और रूप बदलकर देवताओं के साथ बैठ गया। उसने मुंह में अमृत ले लिया, लेकिन इससे पहले कि वह इसे निगल पाता, सूर्य और चंद्रमा ने उसे पहचान लिया। दोनों ने भगवान विष्णु को यह बात बताई। उन्होंने तत्काल अपने सुदर्शन चक्र से राहु का सिर धड़ से अलग कर दिया। लेकिन राहु मुंह में अमृत ले चुका था, इसलिए वह धड़–विहीन होने के बावजूद जीवित रहा। तब से उसने सूर्य और चंद्रमा को माफ नहीं किया है, और अक्सर उन्हें ग्रस लेता है। इसी कारण सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण लगते हैं। धड़–विहीन होने के कारण राहु अधिक समय तक सूर्य या चंद्रमा को निगलकर नहीं रख सकता, इसलिए कुछ समय बाद वे इसकी चंगुल से बाहर निकल आते हैं। कालांतर में राहु का सिर–विहीन धड़ केतु के नाम से जाना जाने लगा, जो बाद में बदलकर धूमकेतु हो गया।

तब से राहु को आठवें ग्रह के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। इसका उल्लेख अष्टोत्तरी दशा साधन में मिलता है। बाद में विंशोत्तरी दशा साधन को लागू किया गया। इसमें केतु को नौवें ग्रह के रूप में शामिल कर लिया गया।

ईसा की तीसरी सदी के आसपास ज्योतिष के सिद्धांत युग की शुरुआत हुई। *सूर्य सिद्धांत* में ग्रहण संबंधी गणना की विस्तृत विधि का उल्लेख किया गया है। इसी काल में इस बात का पता चला कि राहु और केतु चंद्रमा की कक्षा के क्रमशः आरोही पात और अवरोही पात हैं; ये पृथ्वी की कक्षा के तल का प्रतिच्छेदन करते हैं। इस प्रकार, राहु और केतु चांद्र–कक्षा और क्रांतिवृत्त के दो काल्पनिक छेदन–बिंदु मात्र रह गए।

जैसाकि पहले उल्लेख किया जा चुका है, प्राचीन भारतीय ग्रंथों में ग्रहण देखने के उल्लेख उपलब्ध हैं। *महाभारत* में भी सूर्यग्रहण का उल्लेख है। भगवान कृष्ण ने अपने ग्रहण–ज्ञान का इस्तेमाल महान योद्धा अर्जुन की जान बचाने के लिए किया था। उन दिनों ग्रहणों की सटीक भविष्यवाणी की जाती थी। ग्रहण कब शुरू होगा, कब चरम पर पहुंचेगा और कब खत्म होगा, भारतीय पंचांगों में इन सबका उल्लेख है। ग्रहण के इस पूरे काल को 'पर्व काल' कहा जाता है। ग्रहण के समय हिंदुओं में जो प्रथाएं प्रचलित हैं, उनका उल्लेख *मनुस्मृति, ग्रहलाघव, निर्णय सिंधु, अथर्ववेद* समेत कई ग्रंथों में है।

सूर्यग्रहण में अशुभ घड़ी की शुरुआत चार प्रहर पहले और चंद्रग्रहण में तीन प्रहर पहले होती है (प्रहर समय की एक इकाई है। एक दिन में आठ प्रहर होते हैं)। इस अवधि में पकाए गए भोजन को खाने लायक नहीं माना जाता, इसलिए हिंदू आमतौर पर उपवास रखते हैं। पानी, कपड़े, अनाज आदि पर पवित्र तुलसी के पत्तों से पानी छिड़का जाता है। अनेक लोग ग्रहणकाल की शुरुआत के साथ स्नान करते हैं और उसके बाद तर्पण, श्राद्ध, होम, प्रार्थना आदि करते हैं। स्नान के बाद लोग दान भी देते हैं। ग्रहण खत्म होने पर पुनः स्नान करने की प्रथा है। राहु की अपवित्र छाया के दोष से बचने के लिए ग्रहण के बाद स्नान किया जाता है। विवाहित महिलाओं के लिए केश धोना वर्जित है।

यह भी माना जाता है कि ग्रहण के समय जल पूरी तरह शुद्ध हो जाता है – बिल्कुल गंगाजल की तरह। चाहे वह जलप्रपात या झरने का पानी हो अथवा झील, नदी या समुद्र का। सभी जल पवित्र माने जाते हैं। गहरी आस्था वाले लोग स्नान करने के लिए किसी पवित्र स्थान या समुद्र तट पर जाते हैं।

ग्रहण के समय मुद्रा, कपड़े, गाय, घोड़े, जमीन और सोने का दान दिया जाता है। ग्रहण के समय दिए जाने वाले दान को सर्वोत्तम माना जाता है। धनी लोग अपने वजन के बराबर पीतल या तांबे के बर्तन दान करते हैं। वजन के बराबर सोना और चांदी भी दान करने की परंपरा है। माना जाता है कि ग्रहण के समय यदि कोई गाय बछड़े को जन्म दे रही है, तो उसकी परिक्रमा (प्रदक्षिणा) धरती की परिक्रमा के समान होती है।

यदि पूर्वजों की बरसी ग्रहणकाल में पड़ती है, तो उसे खास माना जाता है। उस दिन अन्य बरसी की तरह ब्राह्मणों को भोजन नहीं कराया जाता। ग्रहणश्राद्ध में साधारण या अनपका भोजन दिया जाता है। उस दिन पंडित को सोने का दान करने की भी प्रथा है। यह रस्म रात को भी पूरी की जा सकती है। वैसे, यह प्रथा उन अनेक पारंपरिक रीतियों के विपरीत है जो दिन में ही की जाती हैं। इससे इस बात का भी पता चलता है कि हमारे पूर्वज इन खगोलीय घटनाओं से किस हद तक भयभीत रहते थे।

यह माना जाता है कि यदि ग्रहण किसी के तीसरे, छठे, ग्यारहवें या दसवें राशिघर में पड़ता है (जन्म की राशि के अनुसार), तो यह उसके लिए शुभ होगा। उसके लिए सूर्यग्रहण शुभ होगा या चंद्रग्रहण, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसका जन्म भारत के किस भाग में हुआ था। यदि जन्म राशि के दूसरे, सातवें, नौवें या पांचवें स्थान में सूर्यग्रहण पड़ता है, तो यह उस व्यक्ति के लिए शुभ होगा। यदि यह चौथे, आठवें या बारहवें स्थान में पड़ता है, तो उसके लिए यह नुकसानदेह होगा।

जिनका जन्मदिन ग्रहण के रोज पड़ता है, उन्हें सूर्य को नहीं देखना चाहिए। अन्य लोग ग्रहण लगे सूर्य को देख सकते हैं, परंतु कोरी आंखों से नहीं। ऐसे लोगों को रंगीन पानी भरे बर्तन या कपड़े के द्वारा देखने की सलाह दी गई है। ग्रहण वाले दिन दाढ़ी बनाने, बाल काटने या नाखून काटने की भी मनाही है। उस दिन कोई गंभीर कार्य शुरू करने से भी मना किया गया है। छात्रों को ग्रहण वाले दिन गंभीरतापूर्वक न पढ़ने की सलाह दी गई है।

इस तरह, ग्रहण सिर्फ इसलिए महत्वपूर्ण नहीं हैं कि इनका खगोलीय महत्व

है, बल्कि इसलिए भी कि इनसे हमें अपनी संस्कृति को जानने का मौका मिलता है। विभिन्न काल के लोगों में प्रचलित विश्वासों व प्रथाओं को जानने का अवसर प्राप्त होता है।



प्रचलित अंधविश्वासों का आधार

अनेक समुदायों में सूर्य और चंद्रमा को देवतुल्य माना गया है। चीनी सभ्यता में राजा को सूर्य देवता का अवतार माना गया था। मिस्रवासियों का भी यही विश्वास था। वे मानते थे कि फेरो सूर्य देवता के वंशज हैं। इस कारण राजा सूर्यग्रहण के दौरान सूर्य–मंदिर की परिक्रमा करता था। सूर्य की गति में किसी तरह की अनियमितता होने पर उसका मानवावतार खगोलीय गति को बनाए रखता था। भारत में भी सूर्य और चंद्रमा, दोनों को समान महत्व दिया जाता रहा है। लोग स्वयं को इनके वंशज भी मानते हैं। *रामायण* में भगवान राम को सूर्यवंशी कहा गया है। इसी प्रकार, *महाभारत* में कुरु और पांडु के वंशज चंद्रवंशी बताए गए हैं।

सूर्य और चंद्रमा को देवता माने जाने के कारण यह धारणा बनी कि जब देवताओं पर हमला कर उनकी दुर्दशा की जा सकती है, तो मनुष्य स्वयं को कैसे सुरक्षित कर सकता है? असुरक्षा की इस भावना के कारण एस्कीमो लोग ग्रहण के दौरान अपने बर्तन उलट देते थे। भोज्य व अन्य चीजों को सौर (या चांद्र) कीटाणुओं से और सूर्य (या चंद्र) देवता पर हमला करने वाली सभी हानिकारक चीजों से उन्हें सुरक्षित रखने के लिए ऐसा किया जाता था।

हिंदू प्रथा के मुताबिक ग्रहण के दौरान हानिकारक किरणें निकलती हैं। इसलिए लोग उस समय दरवाजे–खिड़कियां बंद कर घरों में बंद रहते थे।

सूर्यग्रहण की दृष्टि से यह दशा कुछ हद तक वैज्ञानिक है। जब हम नंगी आंखों से (बिना किसी फिल्टर के) सूर्य को देखते हैं, तो रेटिना (दृष्टिपटल) का वह हिस्सा जख़मी हो जाता है जहां सूर्य का प्रतिबिंब बनता है। कभी–कभी तो रेटिना इतना बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो जाता है कि वह ठीक ही नहीं हो पाता। ग्रहण के इस दुष्प्रभाव के कारण ही प्राचीन धर्मग्रंथों में ग्रहण को नंगी आंखों से देखने से मना किया गया है।

अगर कोई पूर्ण सूर्यग्रहण को नंगी आंखों से देखता है, तो उसकी आंखों के दंडों व शुंकओं के जिस भाग पर रोशनी पड़ेगी, वह बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो सकता है। यह क्षति आंशिक ग्रहण या बिना ग्रहण लगे सूर्य को देखने से होने वाली क्षति से दस गुना ज्यादा हो सकती है। दरअसल, पूर्ण सूर्यग्रहण के समय अचानक अंधेरा छा जाने के कारण सभी सूर्य को देखने बाहर आ जाते हैं। यह अंधेरा साढ़े सात मिनट से अधिक देर तक नहीं रहता। अंधेरे में आंखों के तारे (आइरिस) का विस्तारण दिन के सामान्य प्रकाश की तुलना में तीन गुना अधिक होता है। ग्रहण खत्म होने पर सूर्य पुनः अपने तेज के साथ सामने आ जाता है। उस अवस्था में रेटिना पर दस गुना अधिक रोशनी पड़ती है। अर्थात्, सूर्य की रोशनी रेटिना को दस गुना अधिक नुकसान पहुंचाती है। अचानक निकले सूर्य को फैली आंखों से देखने पर आंखें हमेशा के लिए भी खराब हो सकती हैं। सभवतः इसी कारण *स्मृति*, *पुराण* आदि धर्मग्रंथों के रचनाकारों ने लोगों को पूर्ण सूर्यग्रहण न देखने की हिदायत दी थी।

भारतीय समाज मे घुमंतू संन्यासियों को काफी सम्मान दिया जाता रहा है। ये संन्यासी अपने अनुभवों से लोगों को धर्मग्रंथों में दी गई हिदायतों का पालन करने का उपदेश देते रहते थे। इससे ग्रहण संबंधी धारणाएं समाज में गहरी समाती गईं। धर्मग्रंथों में यह सुझाव भी दिया गया है कि यदि कोई व्यक्ति ग्रहण लगे सूर्य को देखना चाहता है, तो उसे कज्जलित शीशे से देखना चाहिए। उस समय के तकनीकी विकास को देखते हुए कहा जा सकता है कि ग्रहण देखने का संभवतः यही सबसे सुरक्षित तरीका होगा।

हजारों सालों में ग्रहण संबंधी जो आंकड़े एकत्र हुए, वे काफी विश्वसनीय

थे। इसके बावजूद यह भविष्यवाणी करना मुश्किल था कि किस क्षेत्र–विशेष से पूर्ण सूर्यग्रहण दिखाई देगा। इसलिए पंडित लोग सूर्यग्रहण की भविष्यवाणी करने की जोखिम नहीं उठाते थे। पंचांग बनाने वालों की छोटी–सी गलती लोगों के जीवन पर भारी प्रभाव डाल सकती थी। ये सब वैज्ञानिक कारण इस बात की व्याख्या करते हैं कि प्राचीन धर्मग्रंथों में पूर्ण सूर्यग्रहण को देखने से क्यों मना किया गया था।

भारत जैसे विशाल देश में औसतन तीस वर्षों में एक बार पूर्ण सूर्यग्रहण देखा जा सकता है। घुमंतू संन्यासी अपने जीवनकाल में कम से कम एक पूर्ण सूर्यग्रहण तो देख ही लेते थे। विश्वविख्यात भारतीय खगोलशास्त्री डॉ. वैणु बाप्पू 7 मार्च, 1970 के पूर्ण सूर्यग्रहण के वैज्ञानिक अन्वेषण के लिए मेक्सिको गए थे। उन्होंने अपने अनुभव को जिन शब्दों में व्यक्त किया था, उसका एक अंश यहां प्रस्तुत किया जा रहा है :

> *पूर्ण सूर्यग्रहण से दो–तीन मिनट पहले सूर्य की रोशनी तेजी से घटने लगती है। यदि आप किसी पर्वतीय क्षेत्र में हैं और पश्चिमी क्षितिज में बादल हैं, तो आपको अपनी तरफ छाया बढ़ती नजर आएगी । इस छाया की गति 800 मीटर प्रति सेकंड होती है (सन् 1995 के सूर्यग्रहण की स्थिति में इसकी गति 1.6 किलोमीटर प्रति सेकंड थी)। पूर्ण ग्रहण के करीब एक मिनट पहले यदि आप पश्चिम दिशा में देखें, तो छाया तेजी से आपकी तरफ बढ़ती प्रतीत होगी। यदि मौसम परिवर्तनशील है, तो पूर्ण ग्रहण से एक मिनट पहले ही आपको एक और नजारा देखने को मिलेगा। आपको छाया–पट्टे (शैडो–बैंड) नजर आएंगे। ये काफी चमकते हुए प्रतीत होते हैं। तब तक चंद्रमा सूर्य के ज्यादातर हिस्से को ढंक लेता है। चमकती हुई चकती से निकलने वाली किरणें घाटी में जगह–जगह तेज प्रकाश डालती हैं जिससे लहरदार छाया–पट्टे बनते हैं। ये तरंग की तरह चढ़ते–उतरते आपकी तरफ बढ़ते हैं। वर्ष 1970 के दौरान मैंने भी छाया–पट्टे देखे थे। एक क्षण के लिए मुझे ऐसा लगा कि मानो ढेर सारे सांप मेरे शरीर पर तेजी से रेंगते हुए निकल रहे हों। तभी मैंने जाना कि*

मैं लहरदार छाया–पट्टे देख रहा हूं। मैं खुले मे खड़ा था। मेरा एक काम पूर्ण सूर्यग्रहण शुरू होने की घोषणा करना था। मैंने दल के अन्य प्रेक्षक को भी सचेत कर दिया, ताकि वह इस रोचक घटना को देख सके। मैंने कहना शुरू किया, "तो अब पूर्ण सूर्यग्रहण आरंभ होने में बस एक मिनट का समय रह गया है। अब हम छाया–पट्टे देख सकते हैं। इस समय यदि आप ऐसे द्विनेत्री या एकनेत्री बायनॉक्युलर से सूर्य को देखते हैं जिसके सामने पारगमन ग्रेटिंग हो, तो आपको फ्लैश स्पेक्ट्रम (वर्णक्रम) नजर आएगा। इसके बाद वर्णमंडल दिखाई देता है। यह इस बात का संकेत है कि पूर्ण सूर्यग्रहण शुरू हो गया है। अगले कुछ मिनट तक (ग्रहण की पूर्णता की अवधि तक) सौर प्रभामंडल दिखाई देता है।

[डॉ. वैणु बाप्पू पहले ऐसे भारतीय खगोलविज्ञानी थे जिन्होंने किसी धूमकेतु की तलाश की थी। उन्होंने 1948 में *बाप्पू–बोक–न्यूकर्क* नामक धूमकेतु की तलाश की थी। अंतर्राष्ट्रीय खगोल–विज्ञान संगठन का अध्यक्ष बनने वाले भी वे पहले भारतीय थे। उन्होंने भारत की सबसे बड़ी, 94 इंच व्यास के दर्पण वाली, प्रकाश–दूरबीन बनवाई। यह दूरबीन अब कावलूर वेधशाला (तमिलनाडु) में स्थापित है।]

पाठकों के ध्यान देने योग्य बात यह है कि डॉ. वैणु बाप्पू जैसे खगोलविज्ञानी भी लहरदार छाया–पट्टे देखकर एक क्षण के लिए किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए थे। इसी से कल्पना की जा सकती है कि एक आम आदमी पूर्ण सूर्यग्रहण से ठीक पहले और बाद बनने वाले छाया–पट्टे देखकर कैसा महसूस करेगा। उसे ऐसा आभास होगा मानो उसके आसपास का सारा वातावरण हजारों सांपों से भरा पड़ा है। संभवतः यही निम्नलिखित मान्यताओं का कारण है :

सूर्यग्रहण के दौरान एक सर्पाकार दानव सूर्य को ग्रस लेता है। सूर्यग्रहण से जुड़े प्रायः सभी मिथकों में इसका उल्लेख मिलता है।

2. ग्रहण के दौरान पकाया जाने वाला भोजन प्रदूषित हो जाएगा।

3. ग्रहणकाल में किसी को कुछ नहीं खाना चाहिए।

4. सभी दरवाजों और खिड़कियों को बंद रखना चाहिए।

5. ग्रहण के बाद सभी को स्नान करना चाहिए।

इसलिए ग्रहण के दौरान लोग उपवास रखते हैं ।इस अवधि में पकाए गए भोजन को वे नहीं खाते। अनाजों पर तुलसी के पत्ते से जल छिड़कने का एक कारण तुलसी में प्रचुर औषधीय गुण होना हो सकता है। इसके अलावा, भारतीय लोग स्वच्छता के प्रति जागरूक रहे हैं। ये स्वास्थ्य के लिए स्वच्छता के महत्व को जानते हैं। इसलिए ग्रहण के बाद स्नान करने की बात तार्किक लगती है। यहां यह सावधानी भी बरती जाती थी कि विवाहित महिलाएं अपने केश न धोएं, क्योंकि रात को लंबे बाल धोना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है। भींगे बालों के साथ सोने से सर्दी–बुखार हो सकता है।

पुरोहिताई करने वालों ने समाज में इन रीति–रिवाजों के कठोर पालन को बढ़ावा दिया है। समाज में अपनी श्रेष्ठता बनाए रखने के लिए वे ऐसा करते थे। आम लोगों की अज्ञानता और भय का फायदा उठाते थे। उनके मन में यह धारणा थी कि यदि देवताओं पर हमला किया जा सकता है, तो आमलोग स्वयं को कितना सुरक्षित महसूस कर सकते हैं? मंत्रोच्चार, प्रार्थना, होम, दान आदि कृत्य ही लोगों में साहस और विश्वास पैदा करते थे, लेकिन वास्तव में वे समाज के सर्वाधिक सुविधासंपन्न वर्ग, पुराहितों के हित साधते थे।

पूर्ण सूर्यग्रहण के दौरान सौर प्रभामंडल देखने का एक प्रभाव यह पड़ा कि लोग देवताओं को उसी तरह चित्रित करने लगे। उनके सिर के आसपास एक आभामंडल बना दिया जाता है।

★ ★ ★

उपसंहार

इन बातों को जानने के बाद प्राचीन प्रथाएं बेकार और उपहासपूर्ण प्रतीत हो सकती हैं, लेकिन छानबीन से इनकी प्रवीणता और तार्किकता का पता चलता है। इसी कारण कुछ प्रथाएं आज भी प्रचलित हैं। हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि सभी अंधविश्वासों को अक्षरशः मानना चाहिए। सौर फिल्टर से पूर्ण सूर्य की आंशिक अवस्था को देखकर कुछ अंधविश्वासों को तो नजरअंदाज किया जा सकता है, लेकिन ग्रहण की पूर्णता को तो कोरी आंखों से ही देखना होगा। विज्ञानियों, कवियों और अज्ञेयवादियों ने एक स्वर से कहा है कि पूर्ण सूर्यग्रहण के अनुभव को शब्दों में नहीं व्यक्त किया जा सकता, इसे बस देखकर अनुभव किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में कम से कम एक बार सूर्यग्रहण अवश्य देखना चाहिए।

हमें आशा है कि हमारे युवा पाठक परिवार के बड़े–बूढ़ों को समझाने में कामयाब होंगे, ताकि वे घर के सभी सदस्यों को इस विलक्षण खगोलीय घटना को देखने की इजाजत दें। पाठकों को सामूहिक रूप से ग्रहण देखने में भी संकोच नहीं करना चाहिए। अब समय आ गया है कि लोग अंधविश्वासों को त्यागकर ग्रहण लगे सूर्य को वैज्ञानिक तरीके से देखें।



संदर्भिका

एस. एम. अलादीन, *महाविश्व*, खंड 6, 1993–94, पृष्ठ 51–57; हैदराबाद से प्रकाशित *डेक्कन क्रॉनिकल* का 5 फरवरी, 1995 का अंक.

आर्यभट–प्रथम, *आर्यभटीय*, इंडियन नेशनल साइंस एकाडेमी, नई दिल्ली, 1976, पृष्ठ 109.

कमलाकर भट्ट, *निर्णय सिंधु*, दूसरा संस्करण, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई, 1935, पृष्ठ 61–77.

ई. हैडिंघम, *अर्ली मैन एंड द कॉसमॉस*, विलियम हैनिमैन लि., लंदन, 1983, पृष्ठ 10–24.

मराठी विश्वकोश, खंड 5, महाराष्ट्र राज्य साहित्य संस्कृति मंडळ, मुंबई, 1976, पृष्ठ 383–35.

एच. मास्पेरो, *L'aastronomie Chinoise avant les Ham*, T'eung Pao, XXXI parts, 1920, pp 288-99.

ए. पैन्नेकोएक, *हिस्ट्री ऑफ एस्ट्रोनॉमी*, जॉर्ज एलेन एंड अनविन लिमिटेड, लंदन, 1961, पृष्ठ 44–47, 87–88.

ऋग्वेद संहिता, खंड1 और 2, हरफ प्रकाशनी, कलकत्ता, 1976.

सलत, *द मुस्लिम प्रेयर बुक*, इस्लाम इंटरनेशनल पब्लिकेशन लिमिटेड, सरे, पृष्ठ 66–67.

ब्रैडले ई. शेफर, *स्काई एंड टेलिस्कोप*, 1994, पृष्ठ 36–39.

श्रीमद् वाल्मीकि रामायण, खंड 1, पांचवां संस्करण, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2040, पृष्ठ 542–43.

डब्ल्यू. ब्रेन्नांड, *हिंदू एस्ट्रोनॉमी*, कैक्सटन पब्लिकेशन, दिल्ली 1988, पृष्ठ 44.

एम. के. वैणु बाप्पू, द *एक्लिप्स ऑफ द सन*, दसवां योगदान, निजामिया एवं जपाल–रंगपुर वेधशालाएं, हैदराबाद, 1979, पृष्ठ 3–4.

भागवत पुराण, दूसरा संस्करण, डी.के. पब्लिकेशंस एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1955, पृष्ठ 74–77.

कुरान, एन.जे. दाऊद द्वारा संपादित व अनूदित, पेंग्विन क्लासिक्स,1974, पृष्ठ 23–24,

आर.सी. थॉम्पसन, द *रिपोर्ट्स ऑफ द मेजिसियंस एंड एस्ट्रोलॉजर्स ऑफ निनावेह एंड बेबीलोन*, ब्रिटिश संग्रहालय, लंदन, 1900.

काशीनाथ उपाध्याय, *धर्मसिंधु*, प्रथम संस्करण, चौखंबा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 1968, पृष्ठ 61–88.

★ ★ ★

अनुक्रमणिका

